विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५९/७१
पोस्टल रजि. नं. NS (M)-16/85

वर्ष १४ ० बम्बई ० बुद्धवर्ष २५२८ ० चैत्र पूर्णिमा [शक] ० दि. ५-४-१९८५ ० अंक १०

सहायक आचार्य-सम्मेलन का समापन-प्रवचन

पिछले दो-ढाई महीनेके गंभीर वातावरणका यह समय बहुत महत्वपूर्ण रहा। पहले एक सामान्य शिविर, फिर महीने भरका दीर्घ शिविर, फिर सतिपट्ठान-शिविर और फिर मेरा स्वयं-शिविर। इन सबकी गहन-गंभीरता द्वारा धम्मगिरिका सारा वातावरण धर्म की तेज तरंगोंसे खूब तरंगित रहा। तपोभूमि खूब तपी। ऐसी अवस्थामें सहायक आचार्योंका यह तीसरा वार्षिक सम्मेलन अपना विशेष महत्व रखता है।

धर्म के फैलनेका समय आया है। २५०० वर्ष के बाद फिर एक बार धर्मशासन जागा है। परम पू. गुरुदेव की भविष्यवाणीका यह मंगल-घोष गूंज उठा है–"विपश्यना का डंका बज चुका है। आगामी ५०० वर्षों तक लोगोंका बहुत बड़ा कल्याण होने ही वाला है।" हमारे लिए बड़े सौभाग्यकी बात यह हुई कि हम इस पावन कार्य में माध्यम बन गए। भले थोड़ीसी मात्रामें ही सही, पर लोगोंको अपने दुःखोंसे बाहर निकालनेमें और उन्हें यह कल्याणकारी मार्ग मिल सकनेमें हमें सेवाका अवसर प्राप्त हो गया।

लोगोंका कल्याण तो होता ही, होगा ही। उनका अपना पुण्य! उनकी अपनी पारमी! लेकिन हमको अपनी पुण्य-पारमी बढ़ानेका अवसर मिला। यह हमारे सौभाग्य की बात हुई। किस प्रकार धर्म अपना काम करता है? कोई व्यक्ति भला क्या करेगा? वह तो माध्यम मात्र भले बन जाय। पिछले १५ वर्षों में जितना काम हुआ उसे देखकर लगता है कि सचमुच धर्म कितना महान है। किस आश्चर्यजनक ढंगसे काम करता है! सामान्यसे सामान्य व्यक्तिमें किस प्रकार असीम बल भर देता है, अप्रत्याशित योग्यता भर देता है। किस प्रकार स्वतः लोक-कल्याण होने लगता है। पिछले १५ वर्षों में यद्यपि बहुत छोटा काम हुआ है। अभी बहुत कुछ होना बाकी है। आरंभ ही हुआ है। पर बहुत अच्छा आरंभ। बड़ा नन्हासा कदम उठा है। पर बड़ा महत्वपूर्ण कदम।

कभी कभी कोई कोई व्यक्ति आकर मुझसे कहता है, "आपने अकेले इतने थोड़े वर्षोंमें इतना बड़ा काम कर दिया, आश्चर्य की बात है।" मैं कहता हूँ, "नहीं भाई, मैंने अकेले कैसे कर दिया? काम तो धर्म करता है और अनेकोंको माध्यम बनाकर करता है। मैं भी एक माध्यम बन गया।" बात कितनी सही है। १५ वर्ष पहले जब इस देशमें आया तो कितने कम लोग मुझे जानते थे। जो थोड़े लोग जानते थे वे भी अन्यमनस्क हो गए। मुँह फेर लिया। शिविर लगाना कोई आसान काम नहीं। ऐसी अवस्थामें जो पहला शिविर लगा वह किस आश्चर्यजनक ढंगसे लगा। कैसे एक अपरिचित सा व्यक्ति अपने आप चला आया। कहने लगा, "शिविरकी सारी व्यवस्था मैं करूंगा। दो या तीन दिनमें ही सारी व्यवस्था पूरी करनी है। यह सब मैं अपने जिम्मे लेता हूँ। जो आपके परिचित हों वे शिविरमें शामिल हों। साथ ही मैं और मेरे कुछ परिचित शामिल होंगे।" सचमुच तत्काल उसने शिविरके लिए एक धर्मशालाका प्रबंध कर दिया। बर्तन-भांडेका, भोजन-राशनका, नौकर-चाकरका प्रबंध कर दिया और बिना किसी कठिनाई के पहला शिविर लग गया। उस एक शिविरके बाद तो जिन लोगोंने धर्म चखा उनमें से कितने लोग निःस्वार्थ भावसे सेवामें लग गए। किस प्रकार उन्होंने सेवा की? आश्चर्य होता है। उनमेंसे कुछ लोग ऐसे जिनका जीवन अत्यंत व्यस्त। अपने अपने काम-धंधे की जिम्मेदारियोंमें इतने उलझे हुए। फिर भी उमंग जागी कि धर्म-सेवा करनी है। तो अपना सारा काम-धंधा, सारी जिम्मेदारियोंको एक ओर रखकर किस प्रकार जुट गए। कितनी बड़ी संख्यामें लोग लग गए। कितना बड़ा काम किया उन्होंने। अनेक जन्मोंसे जिन लोगोंके साथ पारमिताओंके साथ संबंध रहा है वही लोग इस प्रकार खिंचे हुए आते हैं। वही लोग एक बड़े परिवारके अंगकी तरह जुट जाते हैं। जैसे परिवारका हर सदस्य अपनी जिम्मेदारियाँ निभाता है। उसी प्रकार कितने लोग सेवाएँ

धम्म वाणी

यथा'पि कुम्भकारस्स, कता मत्तिकभाजना।
सब्बे भेदनपरियन्ता, एवं मच्चान जीवितं॥

सल्ल सुत्तं– ४

जैसे कुम्हार के बनाए हुए सभी मिट्टीके भाण्डे टूट जानेवाले हैं, वैसे ही मर्त्य प्राणियोंका जीवन।

देने लगे। क्योंकि उनके साथ अनेक जन्मोंका पारमिताओंका इतना गहरा संबंध रहा है। इसलिए खिंचे हुए चले आए। ऐसे लोगोंकी धर्मसेवाके बिना कोई अकेला आचार्य क्या कर लेता भला ? एक ओर शिविरोंका प्रबंध करनेवाले यह निःस्वार्थ सेवाभावी धर्म-साथी और दूसरी ओर सिखानेवाला आचार्य। ये दोनों गाड़ीके दो चक्के, दोनोंही आवश्यक। दोनों, पक्षी की दो पांखें, दोनोंही आवश्यक। ऐसा अपने अनुभवसे जाना। और अब जबकि धर्मका फैलाव बढ़ रहा है तो एक ओर तो इतने सारे सहायक आचार्य और दूसरी ओर उनकी धर्मसेवामें लगे हुए इतने धर्मसेवक। धर्म की ही महिमा है। किस प्रकार यह आ जुटे ? कहाँ से आ जुटे ? दोनों वर्गके लोग किस प्रकार सेवा कर रहे हैं ? किसीका कम महत्व नहीं है। इन धर्म सेवकोंका उतनाही महत्व है जितना कि सहायक आचार्योंका। दोनोंकी ही बहुत बड़ी धर्मसेवा है।

धर्म सिखानेके लिए ऊँचे आसन पर बैठना आवश्यक होता है। परंतु जब कोई सहायक आचार्य ऊँचे आसन पर बैठता है तो इस भावसे नहीं कि मैं इन अन्य धर्म-भाईयों और धर्म-बहनोंसे कहीं ऊँचा हूँ, अधिक महत्वपूर्ण हूँ। तभी तो मुझे इस कामके लिए चुना गया है। तभी मैं ऊँचे आसन पर बैठता हूँ। ये लोग मुझसे छोटे हैं। ऐसा भाव कदापि नहीं होता। होना भी नहीं चाहिए। इसी प्रकार जो प्रबंध सेवामें लगे हैं उनके मनमें जरा सी हीन-भावना नहीं होती कि हम कुछ हल्के हैं इसीलिए सहायक आचार्य के पद पर नहीं चुने गए। हम मामूली सेवा ही करते हैं और देखो हमारा यह साथी सहायक आचार्य बना दिया गया। ऐसा चिंतन हो तो धर्मका चिंतन नहीं है। शरीरके कौनसे अंगको अधिक महत्वपूर्ण मानें ? कौन से को कम ? हर एक अंग अपनी अपनी जगह महत्व-पूर्ण है। 'मैं सबसे ऊँचा हूँ' यह सोचकर यदि सिर सूज जाय और अपने को अधिक महत्वपूर्ण मानने लगे तो शरीरके बाकी अंग कहें-- अच्छा तू रह ऊँचा, हम नहीं तेरी मदद करते। तो जीना दूभर हो जाय उसका। हर अंग अपनी जगह महत्वपूर्ण है। सिर हो, हृदय हो, हाथ हों, पांव हों, किसीका भी महत्व कम नहीं। इसी प्रकार यह धर्म-शरीर। जिस व्यक्तिको जिस काममें लगना है, उसे छोटा या बड़ा मानकर नहीं। इस भावसे लगना है कि इससे लोगोंका कल्याण हो रहा है। साथ साथ मेरा भी तो कल्याण है ही। इससे बड़ी सुविधा और क्या मिल सकती है भला कि मैं अपनी पुण्य-पारमिताओंको पूरा करनेमें इस वातावरणका लाभ ले रहा हूँ। इतने लोगोंको धर्मदान मिल रहा है। लोगोंको अपने दुःखोंसे बाहर निकल-नेका रास्ता मिल रहा है और उसमें मेरा भी थोड़ा सा योगदान है। इस रूपमें है या उस रूपमें है। इससे क्या फरक पड़ता है ? यों मुदित चित्तसे हर व्यक्ति काम करे। न ऊँचे आसन पर बैठे हुए आचार्य अथवा सहायक आचार्य के मनमें किंचित् मात्र भी अंहभाव जागे, न अन्य सेवा करनेवालोंके मनमें किसी प्रकारका हीन-भाव जागे, तो ही धर्मका शुद्ध वातावरण तैयार होता है।

अच्छा है कि सभी जगह ऐसा ही हो रहा है। स्थान स्थान पर जहाँ जहाँ भी शिविर लगते हैं, एक ओर कोई सहायक आचार्य अपनी सेवा देनेके लिए जा पहुँचता है। नितांत निःस्वार्थ भावसे। उसे कुछ नहीं मिलता। उसे बदलेमें कुछ चाहिए भी नहीं। और दूसरी ओर कितने धर्म सेवक जुट जाते हैं, व्यवस्था करने में। बदलेमें उन्हें भी कुछ नहीं चाहिए। कुछ भी तो नहीं मिलता उन्हें। उनको तो सम्मान भी नहीं मिलता। कोई सिर भी नहीं झुकाता उनके सामने। उन्हें जरूरत भी नहीं कि कोई उन्हें सिर झुकाए। सहायक आचार्य को भी जरूरत नहीं कि कोई उसके सामने सिर झुकाए। कोई सिर झुकाता है तो धर्मको सिर झुकाता है। सम्मान प्रकट करता है तो भगवान बुद्ध के प्रति प्रकट करता है जिन्होंने यह कल्याणकारी विद्या खोज निकाली और मुक्त-हस्तसे बांटना शुरू कर दिया। उस परंपराके प्रति सिर झुकाता है जिसने इसे कायम रखा। धर्म के प्रति सिर झुकाता है जो इतना कल्याणकारी है कि बिना भेदभावके जो धारण करे उसीका भला कर देता है। सिर झुकानेवाला इसी समझदारीके साथ सिर झुकाए। जिसके सामने सिर झुके वह भी यही भाव रखे। कहीं छोटे-बड़ेका, ऊंच-नीचका जरा भी भेद-भाव नहीं आने पाए। सभी धर्मभाई-धर्मबहन मिल-जुलकर धर्म-सेवा कर रहे हैं। जिस उदात्त भावनासे भगवानने कहा, "चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, लोकानुकम्पाय" बस लोगोंपर अनुकम्पा करके अधिक से अधिक लोगोंका हित-सुख कैसे हो ? इसी एक भाव से। यह नहीं कहा कि बदलेमें तुझे यह मिलेगा, वह मिलेगा। तो कोई इस भावसे सेवा न करे कि बदलेमें मुझे क्या मिलेगा ? सम्मान ? प्रतिष्ठा ? धन-दौलत ? अगर इस भावसे काम करे तो धर्म-सेवा नहीं। अहंभावका पोषण कर रहा है। अपनी ही हानि कर रहा है। बदले में कुछ नहीं चाहिए। सहायक आचार्य ऊंचे आसन पर बैठा है अथवा कोई अन्य व्यक्ति सेवाका काम संभाले है, काम कोई ऊंचा-नीचा नहीं होता। बस काम कर रहा है। किसी प्रकार का हो। उससे लोक-कल्याण होता है कि नहीं ? अधिक से अधिक लोगोंका भला होता है कि नहीं ? यदि हाँ, तो मैं उसमें किस प्रकार सेवा दे सकता हूँ, दे सकती हूँ ! यही लक्ष्य हो।

बस धर्म बांटना है। और यह भी समझे रहेगें कि किस प्रकार बांटना है ? अगर केवल यही कहेंगे कि ऐसा करो, ऐसा न करो, ऐसा न करो; तो ऐसे कोरे उपदेशोंसे कुछ नहीं होनेवाला। जो दूसरेको करनेको कहें, वह स्वयं करें। "पकासेथ च ब्रह्मचर्यं" अपने ब्रह्माचरणका प्रकाशन करना है। हम स्वयं धर्म का जीवन जी रहे हैं इसका प्रकाशन करना है। लोग देखेंगे सचमुच जी रहे हैं ये लोग। जो सिखाते हैं वह स्वयं धारण करते हैं। तो ही सिखानेका कोई महत्व है, तो ही सिखाना लाभदायक होता है। हर साधक जो किसी शिविरमें आता है वह आचार्य या सहायक आचार्यकी ओर देखता है – इस व्यक्तिका व्यवहार कैसा ? बर्ताव कैसा ? इसका जीवन कैसा ? और यह लोग जो सेवामें लगे हैं, पुराने साधक हैं, बहुत वर्षों से अभ्यास कर रहे हैं – इनका जीवन कैसा ? व्यवहार कैसा ? बर्ताव कैसा ? अगर उनमें कमी पायेगा तो कैसे धर्म को स्वीकार करेगा भला ? जिस धर्मने इन्हीं लोगोंका कल्याण नहीं किया, मेरा कैसे कल्याण करेगा ? और यदि इन लोगोंमें धर्म देखेगा तो बड़ी प्रेरणा जागेगी उसके मन में।

बहुत बड़ी जिम्मेदारी है धर्म सिखानेवालों पर और सेवा देनेवालों पर। अपने भले के लिए ही नहीं, जो अनेक लोग धर्म लेने

आए हैं उनकी सही सेवा हो, उनका सही भला हो, इसलिए भी। अतः अपना जीवन जहाँ तक हो सके आदर्श रहे, निर्मल रहे। ऐसा जीवन हो जिसे देखकर जिस व्यक्तिके मनमें धर्म के प्रति श्रद्धा नहीं है उसमें श्रद्धा जागे। जिस व्यक्तिके मनमें श्रद्धा है उसका संवर्धन हो।

कहीं ऐसा न हो जाय कि हमारे दूषित व्यवहारको, बर्तावको देखकर जिस व्यक्तिके मनमें धर्म के प्रति श्रद्धा नहीं है वह कभी श्रद्धा जगाए ही नहीं, धर्म से दूर ही भागे। और जिसके मनमें किसी कारणसे श्रद्धा जगी हुई है वह अपनी श्रद्धा खो बैठे। इसीलिए कहा कि बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। अपने जीवनको जहाँ तक हो सके निष्कलंक रखना है। आचरण में उतारना है धर्म को। यही धर्म का प्रकाशन है। इसीको देखकर लोग धर्म धारण करेंगे। संप्रदायमें नहीं उलझेंगे। शुद्ध धर्म स्वीकारेंगे।

यह अच्छी बात है कि अब तक जो काम हो रहा है वह बहुत शुद्ध रूपमें हो रहा है। चाहे कोई सहायक आचार्य बना या धर्म-सेवक बना, सब इसी भावसे काम कर रहे हैं कि कैसे अधिक से अधिक लोगोंका भला हो! कल्याण हो! यह निःस्वार्थ मंगल-भावना कायम रहे। २५०० वर्ष पुरानी स्वस्थ परंपरा कायम रहे। इस परंपरामें कहीं कोई दाग नहीं लग जाय। कोई भी धर्मसेवा करनेवाला व्यक्ति अथवा सहायक आचार्य जरा भी स्वार्थ-साधनके काममें न लगे। न कोई भौतिक स्वार्थ, न कोई यशकी कामना-पूर्तिका स्वार्थ, न कोई मान-सम्मान पानेका स्वार्थ। बस एक ही लक्ष्य हो कि कैसे लोक कल्याण हो? कसे अधिक से अधिक लोगोंका भला हो? अधिक से अधिक लोगोंका मंगल हो?

शुद्ध धर्म का चक्र चलता ही रहे, चलता ही रहे!

लोगोंको धर्मका मार्ग आसानीसे मिलता ही रहे, मिलता ही रहे!

सारे विश्वमें छाया हुआ अज्ञानका अंधकार दूर होता ही रहे, दूर होता ही रहे!

शुद्ध ज्ञानका प्रकाश सारे विश्वमें फैलता ही रहे, फैलता ही रहे!

संसारके सभी दुखियारे धर्म के संपर्क में आते रहें और अपने अपने दुःखोंसे मुक्त होते रहें!

सबका मंगल हो! सबका भला हो! सबका कल्याण हो!

भवतु सब्ब मंगलं!

संग्राहक – श्री पालीवाल
२ फरवरी, १९८५.

मंगल मित्र,
स. ना. गो.

साधकोंके उद्गार

कोल्हापुरसे आर्कीटेक्ट श्री राजाराम बेरी लिखते हैं, "लगभग एक सप्ताह पूर्व मैंने इगतपुरी में सतिपट्ठानसुत्त-शिविरमें भाग लिया। आपका अत्यंत कृतज्ञ हूँ कि आपने धर्म के गूढ़ परन्तु आधारभूत तत्वोंकी इतनी सुन्दर व्याख्या की जो कि इस साधनाके लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। ऐसे धर्ममय वातावरणमें साधना करनेके साथ साथ धर्म की बारीकियोंको समझनेका जो अनूठा अवसर मिला उससे अपने मनकी गांठोंको बहुत साफ साफ देख पाया और जब जब समताके साथ देखा तो उनके खुलने यानी समाप्त होने के स्वभावको भी समझ सका। वस्तुतः यह धर्म के रास्ते उठाया गया बहुत बड़ा कदम रहा।"

मैत्री उद्गार

सबका मंगल होय रे! सबका मंगल होय रे!
जन जन मंगल होय रे!
हृदय हृदय में शुद्ध धरमकी, ज्योत जले दिन-रैन रे!
हृदय हृदय में आनंद उमड़े, भर जाए सुख-चैन रे!!
पाप कटे संताप हटें सब, दुःख द्वन्द्व हों दूर रे!
जन जन मनमें मैत्री जागे, मंगलसे भरपूर रे!
चांद-सूर्य से और गगन से, बरसे अमृत धार रे!
धरती के कण कण में होवे, मंगलका संचार रे!!
स्वस्थ होंय, दुःखमुक्त होंय सब, निर्भय हों निर्वैर रे!
गूंजे नभ में, जन जन मनमें, शुद्ध धरम संदेश रे!!
सबका मंगल होय रे! सबका मंगल होय रे!!

आचार्य–स्वयं–शिविरकी समाप्ति पर मैत्री–भावना के समय स्फुरा हुआ यह मैत्री–गीत आचार्यश्री को समर्पित!

मुनि भुवनचन्द्र

गुरुदेवके सासकी शरीर-च्युति

पू. गुरुदेवकी धर्मपत्नी श्रीमती इलायचीदेवी गोयन्काको मातृ-वियोग हुआ। पिछले दिनों जयपुर-शिविरके दौरान सूचना मिली कि उनकी माता श्रीमती चावलीदेवी माखरियाने ७५ वर्षकी पकी अवस्थामें सूरतमें अपने घर पर शरीर त्याग दिया। गुरु-पत्नीकी माताजी विपश्यना-साधिका थी। नित्य-नियमित विपश्यना का अभ्यास करती थी। पिछले कुछ महीनोंसे रुग्ण अवस्थाका धर्म-धैर्यपूर्वक सामना कर रही थी। जीवनके अंतिम क्षण तक विपश्यनाके अभ्यासका समर्थ संबल बना रहा। परिणाम-स्वरूप मृत्युका क्षण सुखद रहा। रोगिणीने सचेत रहकर प्रसन्न चित्तसे प्राण छोड़े। मृत शरीरके चेहरेकी रौनक दर्शनीय थी। गुरु-पत्नीके जयपुरसे सूरत पहुँचने तक मृत्युके २४ घंटे बीत चुके थे। उनके पहुँचनेके बाद ही दाह-क्रिया संपन्न हुई। तब तक चेहरेकी कांतिमें अथवा शरीरके लचीलेपनमें कोई अंतर नहीं आया। लोगोंने देखा कि मृत्युके समय सद्गतिकी ओर ले जानेवाली विपश्यनाका सहारा मृत शरीर पर इतने लंबे समय तक अपना प्रभाव छोड़ गया। धर्म महान है।

दुर्घटनामें देहावसान

सूचना मिली है कि अकोलाके साधक श्री कनुभाई वोराका देहावसान "इलेक्ट्रिक शॉक" की दुर्घटनासे हुआ। मृत्युके समय कोई व्यक्ति उनके पास नहीं था। परन्तु दो दिन बाद मृतकको देखा गया तो इस दुर्घटनाकी दुःखभरी मृत्युके बावजूद भी चेहरेपर शांत और सौम्यभाव व्याप्त था। यद्यपि चेहरा सूजा हुआ था। चेहरेकी शांति और सौम्यतासे अनुमान किया जाना स्वाभाविक है कि विपश्यनाने अंतिम क्षण सहायता की ही।

दिवंगत की सद्गति और शोक-संतप्त परिवारके लिए विपश्यना-परिवार की मंगल-मैत्री!

अद्‌भुत अवसान

फ्रांसीसी महिला अम्बरशॉक विपश्यनाकी पुरानी साधिका है। पिछले वर्ष भारतमें विपश्यनाके एक शिविर के दौरान उसे घरसे सूचना मिली कि उसकी मां बहुत बीमार है। अतः वह शीघ्र घर लौट गयी। देखा मां मरणावस्थामें पड़ी है। शरीर का अधोभाग पक्षाघात-ग्रस्त और तिस पर कैंसरका बढ़ा हुआ रोग। उसे मरण तक पीड़ासे मुक्त रखनेके लिए डाक्टर दिनमें कई बार गहरे नशेकी सूइयाँ देता था। और कोई उपचार नहीं था। डाक्टरों और घरवालोंकी इच्छाओंके विरुद्ध विपश्यी बेटीने अपनी मांको इस बातके लिए राजी कर लिया कि वह गहरे नशेमें नहीं, बल्कि पूर्ण सजग, सचेत रहते हुए अपने प्राण त्यागेगी और पीड़ाको सहन करेगी। अतः नशेकी सूइयाँ बंद कर दी गयीं। बेटी ने मांको आना-पान सिखाया और फिर विपश्यना दी। असह्य पीड़ा के होते हुए भी बेटीका कहना मानकर साधना करते-करते रोगिणीको अनित्य-बोधके प्रवाहकी अनुभूति होने लगी। जब कभी पीड़ा जागे तो उसे विपश्यनाके बल पर बींध-बींधकर देखते हुए समाप्त कर ले। इस अवस्थामें रोगिणीने २२ दिन निकाले। मृत्यके कुछ समय पूर्व कृतज्ञताविभोर होकर उसने यह धर्मकामना प्रकट की कि इस कल्याणकारी विद्यासे अनेकोंका कल्याण हो!

मृत्युके दिन प्रातःकाल अपनी बेटीको कहा कि पिता व बहनको नाश्ता कराए और स्वयं भी करे। परिवारके लोग नाश्तेके बाद लौटकर आए तो उन सबसे विदा लेते हुए रोगिणीने मुस्कराते हुए अपने प्राण त्याग दिए।

धन्य धर्म! धन्य विपश्यना!

(साधिका अम्बरशॉक द्वारा लिखे गए लंबे विवरणका संक्षिप्त रूप)

विशेष सूचना :

१) कृपया साधना-शिविर में शामिल होने से पूर्व शिविर-व्यवस्थापक के पास संपर्क-पते पर अपना नामांकन अवश्य करा लें।

२) किसी कारणवश शिविर में सम्मिलित न हो सकते हों तो पर्याप्त समय रहते सूचित करें ताकि किसी अन्य प्रत्याशी को स्वीकृति दी जा सके।

३) शिविरों के नियम कड़े होते हैं; उनका कड़ाई से पालन कर सकें तो ही भाग लेना चाहिए।

मैसर्स मोतीलाल बनारसीदास
बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-११० ००७.
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

जीवन भर बढती र वै, सुखद पुन्य की बेल।
मरण काल चेतो र वै, हुवै सुरग सूं मेल ॥१॥
मंगल बेला मरण की, उजलो हुवै उजास।
राखै बिमल बिपस्सना, जाग्रत अंतिम सांस ॥२॥
हलको होवै मरण-दुख, दूर हुवै संताप।
जागै अन्तर पुन्यबल, पास न फटकै पाप ॥३॥
जै मिल जावै धरम को, बिपस्सना आलोक।
कदे लोक बिगड़ै नहीं, ना बिगडै परलोक ॥४॥
पाप ताप संताप सूं, जीवन हुवै असोक।
सुधरै यो भवलोक भी, सुधरै बो परलोक ॥५॥
जीवन जीणै री कला, सुद्‌ध धरम संजोग।
म्रित्यू मरणै री कला, बिपस्सना रै जोग ॥६॥

दोहे धर्म के

जय भगवती विपश्यना, जय जय मंगल मूल।
प्रज्ञा शील समाधि का, धारे प्रखर त्रिशूल ॥१॥
जय जय अरिदल मर्दिनी, पावन परम पुनीत।
राग द्वेष के मोह के, असुर हुए भयभीत ॥२॥
कल्याणी भव-तारिणी, जय जय मंगल स्रोत।
जय जय जगहितकारिणी, जगी धरम की ज्योत ॥३॥
देव-लोक के देवगण, गाएँ मंगल गीत।
धर्म दुदुंभी बज उठी, जन मन हुआ अभीत ॥४॥
एक बार फिर से खुले, जन हित अमृत द्वार।
हर्ष और उल्लास का, उमड़ा उदधि अपार ॥५॥
पाप शाप संताप के, बुझ जाएँ अंगार।
जग मरुधर पर बह चली, पुण्य धरम की धार ॥६॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३. दूरभाष : ८६
मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपूर, नासिक-४२२ ००७. टेलिफोन : ३०२५१ ● वार्षिक शुल्क रु. १०/-आजीवन शुल्क रु. १००/-

विपश्यना " 4/85

पो. र. नं. NS(M) 16/85

Licence No. NS 18
Licensed to post without pre-payment

प्रेषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र)

To